International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 1 Ser. III || January 2018 || PP 109-111

टेलीविजन पत्रकारिता की चुनौतियाँ

डॉ मुकेश गुप्ता
ऐसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग एम.एच. पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद, उ0प्र0

मीडिया समाज की यथावत् प्रस्तुति का एक सशक्त माध्यम है। समाज में घटित घटनाओं, समूह की सोच और प्रतिक्रियाओं का प्रतिबिम्बित करने के साथ यह एक ओर तो समाज की प्रबुद्ध बनाता ही है तो दूसरी और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी करता चलता है। 15 सितम्ब्र 1959 को पहली बार भारत में दिल्ली और उसके आस पास टेलीविजन सत्यं, शिवं, सुन्दरं के प्रतीक के साथ प्रारम्भ हुआ जिसका अर्थ था उच्चादर्शो का सच, कल्याण का शिव और लोकजीवन का सुन्दर प्रदर्शन। 15 अगस्त 1982 में रंगीन टीवी के साथ ही विज्ञापन सेवा को भी इसमें स्थान मिला और यह दूरदर्शन का बाज़ार की ओर पहला कदम था।

समाज की मानसिक अवस्था, वैचारिक चिन्तन की प्रवत्ति, संस्कृति तथा जीवन की विभिन्न दिशाओं को नियन्त्रित करने में मीड़िया की महती भूमिका है। सूचनाओं के संग्रहण व संप्रेषण के अतिरिक्त मीडिया का प्रमुख उद्देश्य मानवीय मूल्यों का संवर्धन, मनोरंजन, जागरूकता, सौहार्द और राष्ट्रीय एकता को स्थापित करना भी है। यही नहीं यह विकासोन्मुख समाज की गतिविधियों, उसके चिन्ता के कारणों और परिणामों पर भी दृष्टि रखता है। यह एक सभ्य समाज के निर्माण में अपना अतुलनीय योगदान देते हुए उसे सभी संकीर्णताओं से मुक्त कराने का भी कार्य करता है। मीडिया अशिक्षित को शिक्षित बनाने, समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को बेहतर दशा व दिशा दे सकता है।

जनसंचार के इलैक्ट्रोनिक माध्यमों, विशेषकर टेलीविजन में जहाँ तकनीकी क्षेत्र की अद्भुत क्रान्ति हुई है वहीं वैश्वीकरण व भूमण्डलीकरण के नाम पर पश्चिम की भोगवादी संस्कृति ने अपने पैर जमाये हैं। आज टेलीविजन पत्रकारिता का स्वरूप बदल गया है। इस पर आज बाजारवाद हावी है। कुसुम शर्मा के अनुसार ''जिन भूमण्डलीकरण, विश्व मानव, ग्लोबल विलेज उदारीकरण, (मुक्त बाजार), वैयक्तिकरण आदि भारी भरकम शब्दों के संजाल में कई देश अपने को फँसा हुआ पा रहे हैं उसके तार दशकों पूर्व विकसित देशों की सोची समझी (कूट) नीति का हिस्सा है। आर्थिक पुनर्निर्माण और व्यापारिक बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य से पश्चिमी देशों ने मिलकर जिन चार प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं– ब्रेटन वुड्स विनिमय दर प्रणाली (ब्रेटन वुड्स एक्सचेंज रेट सिस्टम), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (द इंटरनेशनल मॉनिटरी फंड), विश्व बैंक (वर्ल्ड बैंक), गैट या विश्व व्यापार संगठन (वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन) का गठन किया, उनकी व्यापार नीतियाँ वास्तव में वैश्विक कार्यव्यापार यानी भूमंडलीय कार्यव्यापार द्वारा सभी को आर्थिक समृद्धि प्रदान नही करती, बल्कि वे सम्पन्न और शक्तिशाली देशों के आर्थिक तंत्र में कमजोर देशों को जकड़ती है। विकासशील देशों के नागरिकों को भरपूर शोषण व्यापारिक कम्पनियों द्वारा किया जाता रहा है।[1] भारत का टेलीविजन मीडिया भी इसका अपवाद नही है। आज मीडिया के इस माध्यम के बहाने पश्चिम के पूंजीवादी देश आर्थिक व सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को पसार रहे है। सुधीश पंचौरी के शब्दों में कहें तो मीडिया पर इजारेदारी, बहुराष्ट्रीय निगमों, उनके तमाम नेटवर्को अनुषंगों के मकडजालीय नियंत्रणों के इस दौर में 'सत्य' के होने के सवाल 'सत्य' के निर्माण की प्रकिया और सत्य के 'मूल्य' की तलाश में बदलते है।[2]

आज भारतीय टेलीविजन पत्रकारिता अनेक चुनौतियों से जूझ रही है। पहली चुनौती तो उसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निर्धारित भारत में रणनीति के रूप में है। वें इसके माध्यम से ग्लोबल इमेज तैयार करना चाहती हैं। अनेक व्यावसायिक व पूंजीपति घराने अधिकांश भारतीय टीवी चैनलों के अधिपति है। पत्रकार को इन मालिकों के दृष्टिकोण और व्यावसायिक लाभ की प्रतिपूर्ति करना अवश्यम्भावी हो जाता है। यहाँ मूल्यपरक पत्रकारिता का कोई स्थान नही है। इन पूंजीपतियों का एक मात्र लक्ष्य होता है अधिकाधिक धन कमाना। वे समाचार या कार्यक्रमों के नाम पर केवल माँग और पूर्ति का लक्ष्य सामने रखते है। जिस कार्यक्रम की जितनी माँग होगी वह उतना ही मुनाफा देता है। इसीलिये श्लील–अश्लील, ग्लैमर, अपराध, सेक्स दर्शकों को सब कुछ चटपटा मसालेदार बनाकर परोसा जा रहा है। आज एक समाचार भी पदार्थ या वस्तु है और समाचार सम्पादकों का पूरा ध्यान इस ओर है कि क्या यह समाचार बिकेगा? बाजार, माल, ग्राहक और मुनाफा– जो समाचार इन कसौटियों पर खरा उतरता है वहीं समाचार है अन्य नहीं। इसीलिए सादे और महत्वपूर्ण समाचार उनकी दृष्टि में कोई अहमीयत नही रखते। डॉ0 संगीता गुप्ता के शब्दों में ''आज न्यूज चैनलों का एक विशाल बाजार हमारे सामने है। हर युवा टी0वी0 पत्रकारिता का हिस्सा बनने को तैयार है। सभी चैनल टी0आर0पी0 के फेर में पड़े है। इस 'बुद्धु बक्सें से' हर सैकड कोई नई खबर जन्म लेती है और सैकेड में मर भी जाती है क्योकि पहली खबर मरेगी तो दूसरी आएगी।''[3]

प्रत्येक उद्योग घराने की अपनी सोच है, अपनी प्राथमिकता है लेकिन लक्ष्य एक है, समस्त मर्यादाओं को ताक में रखकर केवल धन कमाना। इसीलिये धर्म के नाम पर हो या अन्धविश्वास के नाम पर, मनोरंजन का जामा हो या सामाजिक कार्यक्रम का, केवल सनसनी, हिंसा, उत्तेजना और अपसंस्कृति के प्रसार के अलावा ये कुछ भी समाज को नहीं दे रहे। धर्म और ज्योतिष के नाम पर कार्ड, अंक और ग्रहों पर चलने वाले कार्यक्रम महज अन्धविश्वास को बढ़ावा दे रहे है, सच्चाई के नाम पर दिखाये जा रहे स्टिंग ऑपरेशन, रियलिटी शोज, डॉस ड्रामा, कॉमेडी सर्कस इत्यादि केवल टी

आर पी के मायावी इन्द्रजाल का ही नमूना हैं। आज जनप्रबोधन के नाम पर सनसनी और वारदात जैसे कार्यक्रम हिंसा, आतंक और भय को जन्म देने वाले बने है। समाचारों में दिखाई जाने वाली शोषण और बलात्कार की घटनाएं मानवीय संवदेनाओं का बलात्कार करती नजर आ रही है। कतिपय कार्यक्रम यथा विज्ञान, पर्यावरण, अन्तरिक्ष सम्बन्धी डिस्कवरी और नेशनल ज्योग्राफी चैनल व दूरदर्शन में साहित्य कार्यक्रम पत्रिका, चर्चा इत्यादि को छोड़ दे या फिर गिने चुने वे धारावाहिक जो युगीन समस्याओं पर दृष्टिपात कर समाज को एक दिशा देने की समझदारी कार्यक्रम में संलग्न है। इनके अतिरिक्त अधिकांश चैनल तो नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास करते हुए युवा और किशोर मन में हिंसा और उत्तेजना के अतिरिक्त कुछ भी नही परोस रहे है।

ब्रेक्रिग न्यूज और एक्सक्यूसिव न्यूज के बहाने टेलीविजन के पत्रकार सादे समाचार को मनगढ़त और चटपटा बनाकर पेश करते है। चौबीस घन्टे चलने वाले समाचारों में गरीबी, निरक्षरता, भ्रष्टाचार, मंहगाई, बेदखल आदिवासी, शोषित मजदूर और दलित, किसानों की आत्महत्या, भूख, बाढ़, दैवीय आपदा जैसी समस्याओं को बहुत थोड़ा स्थान मिलता है। डॉ0 संगीता गुप्ता के शब्दों में इस बाजार की अन्धी दौड़ में टी0वी0 पत्रकारिता का संकट बढ़ता जा रहा है सामाजिक जिम्मेदारी या सामाजिक सरोकार मीड़िया की नैतिक जिम्मेदारी है। लेकिन इलैक्ट्रोनिक मीडिया का बाजार केवल महानगरों तक सिमट रहा है। शहरी वर्ग रोजमर्रा की जिन्दगी में अधिक क्रिकेट, सिनेमा, क्राइम, सेलिब्रिटी को पंसन्द करते है। समूची टी0वी0 पत्रकारिता इसी बाजार की धुरी पर घूमती है।[4]

आज पत्रकारिता की प्रतिबद्धता अपने स्वामी को अधिकाधिक लाभ देने की है। जिसका एक स्वरुप है अधिकाधिक प्रायोजक और विज्ञापनदाता प्रस्तुत करना। विज्ञापन की गलाकाट प्रतियोगिता में हर चैनल इस होड़ में शामिल है। इस दबाव में पत्रकार अपने सिद्वान्तों से समझोता करता है और हर श्लील–अश्लील विज्ञापन को दिखाने के लिए विवश है। अपनी टी आर पी बढ़ाने के लिए वह मर्यादित, अमर्यादित विज्ञापन दिखाता है। जिस चैनल के जितने अधिक उपभोक्ता होगें वह उतने अधिक विज्ञापनों के रेट तय कर सकेगा। टीवी में बढ़ते विज्ञापन उनका, स्वरूप और प्रस्तुति आज के समाज के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। ये विज्ञापन हमारी संस्कृति पर प्रहार करने से नही चूकते। ये हमारी आध्यात्मिक संस्कृति को भोगवादी संस्कृति में बदल रहे हैं। पश्चिमी देशों के लिए भारत एक बहुत बड़ा बाजार है और विज्ञापन समाज को लुभाने का एक बहुत बड़ा माध्यम। टीवी के माध्यम से दिखाये गये विज्ञापन ये बताते है कि आज ब्रांडेड पहनावा, विशिष्ट घर, कार, मोबाइल जीवन की परिपूर्णता का सूचक है। आज के संदर्भो में सादगी और आत्मिक सौंदर्य का कोई स्थान नहीं रह गया है। डॉ0 बलबीर कुंदरा के शब्दों में ''हमारी संस्कृति पर उपभोक्तावादी हमले बोलने का एकमात्र श्रेय विज्ञापनों को जाता है।''[5] यहाँ में डॉ0 हरीश अरोड़ा के विचार से सर्वथा सहमत हूँ कि ''आज समाज के कारण मीडिया नहीं है बल्कि मीडिया के कारण यह समाज है। मीडिया (खासतौर पर टेलीविजन) ने समाज के चिन्तन और मानसिक वृत्तियों पर अपना अधिपत्य जमा लिया है। पहले मीडिया समाज में अभिप्रेरित होकर अपनी दिशा तय करता था लेकिन बाजार के हाथों खेलता वर्तमान मीडिया तंत्र समाज को ही अभिप्रेरित और उत्प्रेरित करने का कार्य कर रहा है। अब मीडिया की सोच ही समाज की सोच बनने लगी है और समाज इस उपभोक्तावादी संस्कृति में अपने को आधुनिक और समाज के समान्य व्यक्ति से अलग दिखनपे की नुमाईशी होड़ में वस्तु बनाता चला जा रहा है।''[6]

पत्रकारिता के सभी मूल्य सारे मानदण्ड सबसे पहले और सबसे आगे की होड़ में कहीं पीछे छूट गये है। उद्योग जगत के विशेषज्ञो का मानना है कि बाजार तंत्र ही भारत को विकासशील देश से हटाकर विकसित देश की पंक्ति में ला खड़ा करेगा। लेकिन वास्तव में किसी भी समाज के लिए उसके संस्कार, उसकी संस्कृति अधिक महत्वपूर्ण है। आज तो केवल बाजार को किसी भी देश की उन्नति और संस्कृति से जोड़कर देखा जा रहा है। सच मानें तो टीवी पत्रकारिता अपनी विश्वसनीयता खोती जा रही है पहले यह एक मिशन थी आज केवल व्यवसाय बनकर रह गई है।

आज टेलीविजन पत्रकारिता की एक चुनौती भाषायी संकट की भी है, आज मीडिया भाषा का नया स्वरूप गढ़ रहा है या हम यह कहें कि भाषा आज बाजार से प्रेरित है। भाषा का यह स्वरूप समाज के बदलाव से नही उपजा अपितु यह एक आरोपित स्वरूप है। प्रो0 नित्यानंद तिवारी के शब्दों में 'भाषा के स्वरूप में परिवर्तन होना चिन्ता की बात नहीं है बल्कि चिन्ता की बात है उस परिवर्तन का सामाजिक, सांस्कृतिक, परिस्थितियों के बिना हो जाना।' आज भाषा में बाजार केन्द्रस्थ भूमिका अदा कर रहा है। आम जनता यहाँ उपेक्षित है तथा संवेदनाएं शून्य है। आज टीवी – पत्रकारिता के क्षेत्र में भाषा गठन की कमान उन्हें सौंपी गई है जो कांवेन्ट की शिक्षा से परिचालित है और जो हिन्दी को बाजार के प्रतिकूल और अंग्रेजी को अनुकूल मानता है। विविध चैनलों द्वारा संचालित समाचार और रियलिटी शोज में, भाषा का ऊल–जलुल प्रयोग कुछ सोचने को बाध्य करता है। यह सच है कि मीडिया की भाषा कहीं हिन्दी की अस्मिता का संकट न बन जाये। यह चिन्ता का विषय है।

महात्मा गॉधी ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा था कि समाचार पत्र एक जबरदस्त शक्ति है किन्तु जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रभाव गॉव के गॉव डुबों देता है और फसल को नष्ट कर देता है उसी प्रकार का कलम का निरन्तर प्रवाह भी नाश की सृष्टि करता है। यदि ऐसा अंकुश बाहर से आता है तो वह निरंकुशता से भी अधिक विषैला सिद्ध होता है। अंकुश तो अन्दर का ही लाभदायक सिद्ध होता है। यही नही उनका मानना था कि ''मैं नही चाहता कि मेरे घर के चारों और दीवारें खड़ी कर दी जायें और खिडकियां बन्द कर दी जायें। मैं चाहता हूँ कि दुनिया के तमाम देशों की संस्कृतियों की हवाएं पूरी उन्मुक्तता से मेरी खिड़कियों से बहें। मेरे घर में कोई कैदखाने का धर्म नहीं चलता लेकिन कोई हमें धरातल से उखाड़ फेंके इसे मैं अस्वीकार करता हूँ।''

यहाँ गणेश मंत्री का वक्तव्य ध्यातव्य है ''मुनाफे के लिए चलायी जाने वाली सस्ती, सनसनी खेज और भड़कीली पत्रकारिता को स्वस्थ और समाजोपयोगी नहीं माना जा सकता। न एक पक्षीय दृष्टिकोण और पूर्वाग्रहों से उत्प्रेरित

पत्रकारिता को सही रूप में पत्रकारिता कहा जा सकता है। सही अर्थो में पत्रकारिता वह है, जो तथ्यों को ठीक से जॉचती परखती है, उन्हें बेलौस ढ़ग से समाज के सामने रखती है, घटनाओं की तह में जाकर उनका निर्भिकता से विश्लेषण करती है और अपने से असहमति रखने वाले व्यक्तियों और वर्गो को, साधनहीन और वंचितों को भी अपने विचार अभिव्यक्त करने का अवसर देती है।''[7]

आज आवश्यकता है कि टेलीविजन पत्रकारिता को सकारात्मक दृष्टिकोण और मूल्यबद्ध परम्परा की ओर उन्मुक्त होते हुए सामाजिक आकांक्षाओं की कसौटियों में खरा उतरने की। समसामयिक जीवन से घनिष्ठ रूप से जुडे होने के कारण इसे जनता को प्रबोधित करने वाले बहुउपयोगी कार्यक्रमों का प्रसारण करना चाहिए। मीडिया कर्मियों को चाहिए कि बाजार की जरूरतों और दबावों के बावजूद अपने विवेक, स्वाभिमान और निष्ठा को संरक्षित रखते हुए राष्ट्रीय संस्कृति और सामाजिक मूल्यों से तालमेल बढ़ाते हुए सस्ते मनोंरजन के स्थान पर साहित्य, कला, संस्कृति और लोकजीवन की प्रस्तुति भी दें।

संदर्भ संकेत–

1. भूमंडलीकरण और मीडिया, कुमुश शर्मा, पृ0 सं0 –26
2. उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, भूमिका, सुधीश पंचौरी
3. हावी होता बाजार और टेलीविजन पत्रकारिता का संकट, बाजार का दबाव और मीडिया का नया अर्थशास्त्र, पृ0 41
4. वहीं,
5. वहीं, विज्ञापन और बाजारवाद, पृ0 98
6. वहीं, कुछ अपनी ओर से, पृ0 8
7. समकालीन पत्रकारिता, मूल्यांकन और मुद्दें, व्यवायिकता के बावजूद, गणेश मंत्री, पृ047–48